



# विक्रम संवाद

पाक्षिक आलेख सेवा/निःशुल्क वितरण के लिए

सम्पादक

महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ

बिड़ला भवन, देवास रोड, उज्जैन-456010

फोन : 0734-2521499, 0755-2660407

Email : mvspujain@gmail.com

vikramadityashodhpeth@gmail.com

Web : www.mvspujain.com

## महाभारत में मौजूद थे मालवगण

रामकुमार श्रीवास्तव

इस अंक में

पृष्ठ क्र. 1-2

महाभारत में मौजूद थे  
मालवगण  
रामकुमार श्रीवास्तव

पृष्ठ क्र. 3-4

भारत की नदी संस्कृति में  
“सरस्वती”  
जयकिशोर वशिष्ठ

पृष्ठ क्र. 5-6

प्रकृति में शिव को  
खोजती “अक्का महादेवी”  
यतिन्द्र तिवारी

पृष्ठ क्र. 7

वैदिक युगीन है भारतीय  
रसायन परंपरा  
मदनलाल वर्मा

पृष्ठ क्र. 8

भोज रचित  
“सरस्वतीकण्ठाभरण”  
और रससिद्धान्त  
मिथिलेश यादव

मालवगण प्राचीन भारत की एक जाति विशेष का संघ था। महाभारत में मालवों के उल्लेख मिलते हैं। अपनी पड़ोसी जाति क्षुद्रकों की तरह मालव के उल्लेख मिलते हैं। यह भी कहा जाता है कि मालव भी महाभारत युद्ध में कौरवों की ओर से लड़े थे। वे पंजाब में निवास करते थे जहाँ उनकी तरह अंबष्ट, यौधेय आदि जनों का भी आवास था। उसके बाद कई शताब्दियों तक वे वही बने रहे। यूनानी सम्राट सिकन्दर के आक्रमण के समय मालवगण का राज्य मुख्यतया रावी और चिनाव के दोआब में था। क्षुद्रकों का राज्य मालवों के राज्य से लगा हुआ था। अतएव मालवों ने क्षुद्रकों के साथ सुदृढ़ ऐक्य स्थापित किया था। दोनों सेनाओं ने वीरता और दृढ़ता के साथ डटकर सिकन्दर का सामना किया। यूनानी इतिहासकार एरियन के अनुसार पंजाब में निवास कर रही भारतीय जातियों में मालव और क्षुद्रक संख्या में बहुत अधिक तथा सबसे अधिक युद्धकुशल थे। अतः उनकी सेनाओं का सामना करने से यूनानी सेना भी हिचकिचाने लगी थी, जिससे सिकन्दर को स्वयं आगे बढ़ना पड़ा था और उस युद्ध में वह विशेष आहत भी हुआ था। अन्त में मालव पराजित हुए और उन्हें हथियार डालने पड़े। पाणिनि के अनुसार मालवगण एक ‘आयुधजीवी’ संघ थे। युद्धविद्या में निपुणता प्राप्त करना इस संघ के प्रत्येक नागरिक का प्रधान कर्तव्य होता था, अतः वहाँ सभी निवासी योद्धा हुआ करते थे। मालवों का समाज अपनी पूर्ण और विकसित अवस्था को पहुँच चुका था। उसमें क्षत्रिय, ब्राह्मण आदि कई वर्ग होते थे और अन्य वर्गों के लोग ‘मालव्य’ कहलाते थे। मालवगणों का अधिकार क्षेत्र बहुत विस्तृत और संगठन अति बलशाली था जिससे उनको पराजित करना कठिन होता था। कात्यायन और पतंजलि ने भी क्षुद्रक मालवी सेना का उल्लेख किया है। इसके बाद क्षुद्रकों का कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता, जिससे यही अनुमान होता है कि सिकन्दर के आक्रमण के समय स्थापित ‘मालव-क्षुद्रक ऐक्य’ समय पाकर अधिकाधिक बढ़ता ही गया और अंत में क्षुद्रक मालवों में ही पूर्णतया समाविष्ट हो गए।

मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद बाख्त्री (बैक्ट्रियन) और पार्थव (पार्थियन) राजाओं ने जब पंजाब तथा सिन्ध पर आधिपत्य स्थापित कर लिया, तब अपनी स्वतंत्रता तथा स्वशासन को संकटापन्न देखकर ईसा पूर्व की दूसरी शताब्दी में मालवगण विवश होकर पंजाब छोड़कर दक्षिण पूर्व की ओर बढ़े। सतलज पारकर पहले कुछ काल तक वे फिरोजपुर, लुधियाना और भटिंडा के प्रदेश में रहे, जिससे वह क्षेत्र अब तक ‘मालव’ कहलाता है। किन्तु यहाँ भी वे अधिक काल तक नहीं ठहर पाए और आगे बढ़ते हुए वे उसी शताब्दी में अजमेर से दक्षिण पूर्व में टोंक-मेवाड़ के प्रदेश में जा पहुँचे तथा वहाँ अपने स्वाधीन गणराज्य की स्थापना की। टोंक से कोई 25 मील दक्षिण में स्थित कर्कोट नागर नामक स्थान उनका मुख्य केंद्र रहा होगा, वहाँ मालवों के विभिन्न कालों के सैकड़ों सिक्के प्राप्त हुए हैं। कुषाण साम्राज्य के उत्थान के साथ ही गुजरात में उनके अधीन पश्चिमी क्षेत्रों ने उज्जैन को जीतकर मालवों पर भी अपना आधिपत्य स्थापित किया था। जैन ग्रंथों के अनुसार शकों को वहाँ लाने में कालकाचार्य का विशेष हाथ था। परन्तु स्वातंत्र्य प्रेमी मालव निरन्तर विद्रोह करते रहते थे। उत्तम भद्रों के सहायतार्थ महाक्षत्रप नहपाण को उषवदात्त (ऋषिभदत्त) के नेतृत्व में मालवों के विरुद्ध सेना भेजनी पड़ी थी। अंत में मालवों के सहयोग से गौतमीपुत्र शातकर्णी ने महाक्षत्रप नहपाण और उसके साथी शकों का पूर्ण संहार किया। मालव प्रारंभ में पंजाब तथा राजपूताना क्षेत्रों में निवास करते थे लेकिन कालांतर में अवन्ति जनपद (वर्तमान उज्जैन) व उसके आस-पास के क्षेत्रों में बस गये। कर्नल जेम्स टॉड जैसे इतिहासकारों का तो यह भी मानना है कि मालव जनजाति के लोग अवंती क्षेत्र से जाकर पंजाब में बसे थे। उन्होंने यहाँ आकर दशार्ण तथा अवन्ति को अपनी राजनीतिक गतिविधियों का केंद्र बनाया। दशार्ण की राजधानी

विदिशा थी तथा अवन्ती की राजधानी उज्जयिनी थी। कालांतर में यही दोनों क्षेत्र मिलकर मालवा कहलाये। मालवगणों की ही एक शाखा के प्रमुख उज्जैन के पदच्युत अधिपति गर्दभिल्ल के पुत्र, सम्राट विक्रमादित्य ने पराजित कर शकों को यहाँ से निकाल बाहर किया था। महाभारत वनपर्व के अनुसार मालव गणराज्य को कर्ण ने विजित किया था। कर्ण ने सामनीति के द्वारा अवन्ती देश के राजाओं को वश में करके वृष्णिवंशी यादवों



से मिलकर पश्चिम दिशा पर विजय प्राप्त की थी। यह जनपद पहले दो विभिन्न भागों में बँटा हुआ था, पश्चिमी भाग अवंतिका क्षेत्र कहलाता था और पूर्वी भाग आकर अथवा दशार्ण नाम से ज्ञात था। वे दोनों बाद में मालवा जनपद में सम्मिलित होकर अभिन्न हो गए। गौतम बुद्ध से पहले भारत सोलह महाजनपदों में विभक्त था। प्राचीन साहित्य के अनुसार मालवा की सीमा के अंतर्गत 'अवन्ती' या 'मालवा' उनमें से एक महाजनपद था। डी. आर. भंडारकर के मतानुसार छठी सदी ई.पू. अवन्ती जनपद दो भागों में विभक्त थी। मालवगण का स्वाधीनता प्रेम और जनतंत्रीय भावनाएँ इस क्षेत्र की सांस्कृतिक विशेषताओं के साथ सम्मिलित हो गए। इस प्रकार जिस नई विस्तृत राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इकाई का निर्माण हुआ, आगे चलकर उसका भारतीय इतिहास में सदैव विशेष महत्व रहता आया है। प्रतापी सम्राट विक्रमादित्य और कालांतर में यशोधर्मन् मुंज और भोज इस परंपरा की महत्वपूर्ण कड़ियाँ थे। मालवगण कार्कोट नगर से दक्षिण में उस सारे प्रदेश पर फैल गए, जो आगे चलकर उन्हीं के नाम से मालवा प्रदेश कहलाने लगा। मालवों के इस गणराज्य में शासन व्यवस्था उनके चुने हुए प्रमुख के हाथ में रहती थी। कई बार उत्तराधिकारी का चुनाव वंश परंपरागत भी हो जाता था। परंतु उनमें गणतंत्रीय परंपरा प्रबल रही। मालवों के कई सिक्के प्राप्त हुए हैं। ये प्रायः छोटे होते थे। मालवों के सिक्के

दो प्रकार के मिलते हैं। प्रथम प्रकार के सिक्कों पर मालवों ने अपनी महत्वपूर्ण विजय की स्मृति में ब्राह्मी लिपि में मालवानां जयः और मालवगणस्य जयः लेख अंकित किए थे। ईसा पूर्व की पहली शताब्दी से ईसा की तीसरी शताब्दी तक ये जारी किए गए होंगे। दूसरे प्रकार के सिक्कों पर मजुप, मपोजय, मगजस, मगोजय, मपक, पच, गजव, मरज, जमुक आदि शब्द अंकित हैं। इन शब्दों के सही अर्थ अथवा उनके संतोषजनक

अभिप्राय के बारे में विद्वानों का एक मत नहीं हो पाया है। ईसा की चौथी शताब्दी के पूर्वार्ध में जब समुद्रगुप्त ने दिग्विजय कर अपने विस्तृत सम्राज्य की स्थापना की, उसने मालवों के गणराज्य को भी अपने अधीन कर लिया, तदंतर मालवों के इस गणराज्य की आंतरिक स्वाधीनता कुछ काल तक अवश्य बनी रही होगी। परंतु गुप्त साम्राज्य के पतन काल में बर्बर हूणों के आक्रमण प्रवाह में मालवगण का समूचा प्रदेश भी निमग्न हो गया। मालवों ने मालवा प्रदेश को एकता और महत्वपूर्ण परंपराएँ प्रदान कीं। यह प्रदेश पहले दो विभिन्न भागों में बँटा हुआ था, पश्चिमी भाग अवंतिका क्षेत्र कहलाता था

और पूर्वी भाग आकर अथवा दशार्ण नाम से सुज्ञात था। वे दोनों अब मालवा प्रदेश में सम्मिलित होकर अभिन्न हो गए। मालवगण का स्वाधीनता प्रेम और जनतंत्रीय भावनाएँ इस प्रदेश की सांस्कृतिक विशेषताओं के साथ सम्मिलित हो गए। इस प्रकार जिस नई विस्तृत राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इकाई का निर्माण हुआ, आगे चलकर उसका भारतीय इतिहास में सदैव विशेष महत्व रहता आया है। यशोधर्मन् मुंज और भोज उसी नवीन सम्मिलित परंपरा की प्रारंभिक कड़ियाँ थे।

मालवगण की दूसरी देन राष्ट्रीय महत्व की है, वह है उनका मालव सम्वत् जो आगे चलकर विक्रम सम्वत् के रूप में भारत में सर्वत्र प्रचलित हुआ। मालवों के गणराज्य की स्वतंत्रता प्राप्ति की स्मृति में ही इस सम्वत् का प्रारंभ हुआ होगा। ईसा की तीसरी शती के पूर्वार्ध से ही राजस्थान, मालवा तथा उनके पड़ोसी प्रदेशों के शिलालेखों में 'कृत सम्वत्' के नाम से इस सम्वत् का उल्लेख मिलता है। ईसा की पाँचवी शती के बाद में शिलालेखों में कृत सम्वत् के साथ ही इसे 'मालव' या 'मालवेश' सम्वत् भी लिखा जाता रहा। ईसा की दसवीं शताब्दी के बाद यही सम्वत् 'विक्रम सम्वत्' के नाम से सुज्ञात हुआ। परम्परागत प्रवाद के अनुसार उज्जैन के प्रतापी शकारि राजा विक्रम की विजय के समय (ई.पू. 57) से ही इस मालव अथवा विक्रम संवत् का प्रारम्भ हुआ था।

## भारत की नदी संस्कृति में “सरस्वती”

जयकिशोर वशिष्ठ

ऋग्वेद में गांधार से लेकर कुरुक्षेत्र तक उत्तर-पश्चिमी भारतीय उपमहाद्वीप में स्थित कई नदियों का उल्लेख है। सबसे पुराना वेद ऋग्वेद है। वेदों से ही भारत की प्राचीन संस्कृति के बारे में पता चलता है। तो वहीं ऋग्वेद व अथर्ववेद में कई सारी नदियों का उल्लेख किया है। अथर्ववेद व ऋग्वेद में लगभग 99 नदियों का उल्लेख किया गया है। ऋग्वैदिक जलशब्दों की पहचान में कई इतिहासकार लगे हुए हैं। यह प्रारंभिक वैदिक काल के भूगोल और कालक्रम को स्थापित करने का सबसे महत्वपूर्ण तरीका है। कुछ पहचान वाली नदियाँ पूर्वी अफगानिस्तान से लेकर पश्चिमी गंगा के मैदान तक फैली हुई हैं, जो पंजाब में एकत्रित होती हैं। क्षेत्र का नाम पंज, ‘पाँच’ और आब, ‘पानी’ से आया है, इस प्रकार ‘पाँच पानी’, इंडो-आर्यन पंच-नाडा का एक फारसी कालक जिसका अर्थ है ‘पाँच नदियाँ’। अवेस्ता में कई लोगों के सजातीय लोग हैं। समान नाम अक्सर अलग-अलग नदियों पर लगाए जाते थे क्योंकि वैदिक संस्कृति अफगानिस्तान के आसपास से पूर्व की ओर (जहाँ वे काफी समय तक रहे थे) पंजाब के माध्यम से उपमहाद्वीप में चली गई थी।

ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि सप्त सिंधुओं में मिलने वाली छोटी पहाड़ी नदियाँ भी हैं। अथर्ववेद व ऋग्वेद में इनको नाव्या अर्थात् नौका से तरण योग्य बताया है। ऋग्वेद व अथर्ववेद में कहीं दो, कहीं तीन व कहीं चार समुद्रों का उल्लेख मिलती है। इसके अलावा गंगा, यमुना, सरस्वती, शतुद्रि, परुष्णी, असिक्नी, मरुदृषा (चेनाव की एक सहायक नदी), वितस्ता, आर्जिकीया, सुषोमा, तुष्टामा, सुसर्तु, रसा, शर्वती, कुभा, गोमती, मैहलू, क्रुमु। इन नदियों के अतिरिक्त सुवास्तु, सरयू, विदार, आपया, दुषद्वती सदानीरा, अंशुमती इन सब नदियों का उल्लेख ऋग्वेद व अथर्ववेद के मंत्रों में किया गया है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में अनेक नदियों का उल्लेख है। दोनों में ‘सप्त सिंधवः’ अर्थात् सात नदियों का अनेक बार उल्लेख है। अथर्ववेद में तो कहा गया है कि सात नदियाँ हिमालय से निकलती हैं और सिंधु में मिलती हैं। इन्हें सिंधु की पत्नी और सिंधु की रानी भी कहा

गया है। इन सात नदियों में पाँच तो पंजाब की ही हैं— शतुद्रि, विपाशा, इरावती, चन्द्रभागा तथा वितस्ता, जिन्हें आज क्रमशः सतलज, व्यास, रावी, चिनाब और झेलम कहा जाता है। इनके अतिरिक्त दो और हैं— सिंधु और सरस्वती। ये सातों मिलकर ‘सप्तसिंधु’ कही जाती हैं। ऋग्वेद में कहा गया है कि सरस्वती नदी पर्वत से निकलती है और समुद्र में मिलती है। अथर्ववेद में उल्लेख है कि देवों ने सरस्वती नदी के किनारे जौ की खेती की। वहाँ की भूमि अत्यन्त उर्वर थी। ऋग्वेद में इसकी बड़ी



महिमा गाई गयी है। इसे सर्वोपरि देवी और सर्वोत्तम माता के तुल्य पूज्य बताया गया है। ब्राह्मण ग्रंथों के अनुसार सरस्वती ‘प्लक्ष प्रास्त्रवर्ण’ नामक स्थान से प्रस्त्रावित हुई और ‘विनशन’ नामक स्थान पर लुप्त हुई है। विनशन वर्तमान में कुरुक्षेत्र का सिरसा नामक स्थान है। उत्तर वैदिक ग्रंथों, जैसे ताण्डय और जैमिनीय ब्राह्मण में सरस्वती नदी को मरुस्थल में सूखा हुआ बताया गया है, महाभारत में भी सरस्वती नदी के मरुस्थल में ‘विनशन’ नामक जगह पर विलुप्त होने का वर्णन आता है। महाभारत में सरस्वती नदी के प्लक्षवती नदी, वेदस्मृति, वेदवती आदि कई नाम हैं। महाभारत, वायुपुराण आदि में सरस्वती के विभिन्न पुत्रों के नाम और उनसे जुड़े मिथक प्राप्त होते हैं। महाभारत के शल्य-पर्व, शांति-पर्व या वायुपुराण में सरस्वती नदी और दधीचि ऋषि के पुत्र सम्बन्धी मिथक थोड़े-थोड़े अंतरों से मिलते हैं उन्हें संस्कृत महाकवि बाणभट्ट ने अपने ग्रन्थ



‘हर्षचरित’ में विस्तार दे दिया है। वह लिखते हैं— ‘एक बार बारह वर्ष तक वर्षा न होने के कारण ऋषिगण सरस्वती का क्षेत्र त्याग कर इधर-उधर हो गए, परन्तु माता के आदेश पर सरस्वती-पुत्र, सारस्वतेय वहाँ से कहीं नहीं गया। फिर सुकाल होने पर जब तक वे ऋषि वापस लौटे तो वे सब वेद आदि भूल चुके थे। उनके आग्रह का मान रखते हुए सारस्वतेय ने उन्हें शिष्य रूप में स्वीकार किया और पुनः श्रुतियों का पाठ करवाया। अश्वघोष ने अपने ‘बुद्धचरित’ काव्य में भी इसी कथा का वर्णन किया है।’ दसवीं सदी के जाने माने विद्वान राजशेखर ने ‘काव्यमीमांसा’ के तीसरे अध्याय में काव्य संबंधी एक मिथक दिया है कि जब पुत्र प्राप्ति की इच्छा से सरस्वती ने हिमालय पर तपस्या की तो ब्रह्मा ने प्रसन्न हो कर उसके लिए एक पुत्र की रचना की जिसका नाम था— काव्यपुरुष। काव्यपुरुष ने जन्म लेती ही माता सरस्वती की वंदना छंद वाणी में यों की— हे माता! मैं तेरा पुत्र काव्यपुरुष तेरी चरण वंदना करता हूँ जिसके द्वारा समूचा वाङ्मय अर्थरूप में परिवर्तित हो जाता है।

ऋग्वेद तथा अन्य पौराणिक वैदिक ग्रंथों में दिये सरस्वती नदी के सन्दर्भों के आधार पर कई भू-विज्ञानी मानते हैं कि हरियाणा से राजस्थान होकर बहने वाली मौजूदा सूखी हुई घग्घर-हकरा नदी प्राचीन वैदिक सरस्वती नदी की एक मुख्य सहायक नदी थी, जो 5000-3000 ईसा पूर्व पूरे प्रवाह से बहती थी। उस समय सतलुज तथा यमुना की कुछ धाराएँ सरस्वती नदी में आ कर मिलती थीं। इसके अतिरिक्त दो अन्य लुप्त हुई नदियाँ दृष्टावदी और हिरण्यवती भी सरस्वती की सहायक नदियाँ थीं, लगभग 1900 ईसा पूर्व तक भूगर्भी बदलाव की वजह से यमुना, सतलुज ने अपना रास्ता बदल दिया तथा दृष्टावदी नदी के 2600 ईसा पूर्व सूख जाने के कारण सरस्वती नदी भी लुप्त हो गयी। ऋग्वेद में सरस्वती नदी को नदीतमा की उपाधि दी गयी है। वैदिक सभ्यता में सरस्वती ही सबसे बड़ी और मुख्य नदी थी। इसरो द्वारा किये गये शोध से पता चला है कि आज भी यह नदी हरियाणा, पंजाब और राजस्थान से होती हुई भूमिगत रूप में प्रवाहमान है। सरस्वती एक विशाल नदी थी। पहाड़ों को तोड़ती हुई निकलती थी और मैदानों से होती हुई अरब सागर में जाकर विलीन हो जाती थी। इसका वर्णन ऋग्वेद में बार-बार आता है। कई मंडलों में इसका वर्णन है। ऋग्वेद वैदिक काल में इसमें हमेशा जल रहता था। सरस्वती आज की गंगा की तरह उस समय की विशालतम नदियों में से एक थी। उत्तर वैदिक काल और महाभारत काल में यह नदी बहुत कुछ सूख चुकी थी। तब सरस्वती नदी में पानी बहुत कम था। लेकिन बरसात के मौसम में इसमें पानी आ जाता था। भूगर्भी बदलाव की वजह से सरस्वती नदी का पानी गंगा में चला गया, कई विद्वान मानते हैं कि इसी वजह से गंगा के पानी की महिमा हुई, भूचाल आने के कारण जब जमीन ऊपर उठी तो सरस्वती का पानी यमुना में गिर गया। इसलिए यमुना में सरस्वती का जल भी प्रवाहित होने लगा। सिर्फ इसीलिए प्रयाग में तीन नदियों का संगम माना गया। वैदिक

काल में सरस्वती की बड़ी महिमा थी और इसे ‘परम पवित्र’ नदी माना जाता था, क्योंकि इसके तट के पास रह कर तथा इसी नदी के पानी का सेवन करते हुए ऋषियों ने वेद रचे और वैदिक ज्ञान का विस्तार किया। इसी कारण सरस्वती को विद्या और ज्ञान की देवी के रूप में भी पूजा जाने लगा। ऋग्वेद के ‘नदी सूक्त’ में सरस्वती का इस प्रकार उल्लेख है कि इनमें गंगे यमुने सरस्वती शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्या असिक्न्या मरुद्धधे वितस्तयार्जीकीये श्रुणुह्या सुषोमयाश्व, सरस्वती, ऋग्वेद में केवल ‘नदी देवी’ के रूप में वर्णित है (इसकी वंदना तीन सम्पूर्ण तथा अनेक प्रकीर्ण मन्त्रों में की गई है), किंतु ब्राह्मण ग्रंथों में इसे वाणी की देवी या वाच् के रूप में देखा गया, क्योंकि तब तक यह लुप्त हो चुकी थी परन्तु इसकी महिमा लुप्त नहीं हुई और उत्तर वैदिक काल में सरस्वती को मुख्यतः वाणी के अतिरिक्त बुद्धि या विद्या की अधिष्ठात्री देवी भी माना गया। ब्रह्मा की पत्नी के रूप में इसकी वंदना के गीत गाये गए हैं ऋग्वेद में सरस्वती को नदीतमा की उपाधि दी गयी है। उसकी एक शाखा में इसे ‘सर्वश्रेष्ठ माँ, सर्वश्रेष्ठ नदी, सर्वश्रेष्ठ देवी’ कह कर सम्बोधित किया गया है।

वाल्मीकि रामायण में भरत के कैकय देश से अयोध्या आने के प्रसंग में सरस्वती और गंगा को पार करने का वर्णन है— ‘सरस्वतीं च गंगा च युग्मेन प्रतिपद्य च, उत्तरान् वीरमत्स्यानां भारुण्डं प्राविशद्वनम्’ सरस्वती नदी के तटवर्ती सभी तीर्थों का वर्णन महाभारत में शल्यपर्व के 35वें से 54वें अध्याय तक सविस्तार दिया गया है। इन स्थानों की यात्रा बलराम ने की थी। जिस स्थान पर मरुभूमि में सरस्वती लुप्त हो गई थी उसे ‘विनशन’ कहते थे। महाभारत में तो सरस्वती नदी का उल्लेख कई बार किया गया है। सबसे पहले तो यह बताया गया है कि कई राजाओं ने इसके तट के समीप कई यज्ञ किये थे। वर्तमान सूखी हुई सरस्वती नदी के समान्तर खुदाई में 5500 वर्ष पुराने शहर मिले हैं जिन में पीलीबंगा, कालीबंगा और लोथल भी हैं। यहाँ कई यज्ञ कुण्डों के अवशेष भी मिले हैं, जो महाभारत में वर्णित तथ्य को प्रामाणित करते हैं। महाभारत में यह भी वर्णन आता है कि निषादों और मलेच्छों से द्वेष होने के कारण सरस्वती नदी ने इनके प्रदेशों में जाना बंद कर दिया जो इसके सूखने की प्रथम अवस्था को दर्शाती है। साथ ही यह भी वर्णन मिलता है कि सरस्वती नदी मरुस्थल में विनशन नामक स्थान पर लुप्त हो कर किसी स्थान पर फिर प्रकट होती है। महाभारत में वर्णन आता है कि ऋषि वसिष्ठ सतलुज में डूब कर आत्महत्या का प्रयास करते हैं जिससे नदी सौ धाराओं में टूट जाती है। यह तथ्य सतलुज नदी के अपने पुराने मार्ग को बदलने की घटना को प्रामाणित करता है, क्योंकि प्राचीन वैदिक काल में सतलुज नदी सरस्वती में ही जा कर अपना प्रवाह छोड़ती थी। बलराम द्वारा इसके तट के समान्तर प्लक्ष पेड़ (प्लक्षप्रस्त्रवण, यमुनोत्री के पास) से प्रभास क्षेत्र (वर्तमान कच्छ का रण) तक की गयी तीर्थयात्रा का वर्णन भी महाभारत में आता है।

## प्रकृति में शिव को खोजती “अक्का महादेवी”

यतिन्द्र तिवारी

दक्षिण भारतीय संत परंपरा में “अक्का महादेवी” वीरशैव पंथ संबंधी कन्नड़ कविता में प्रसिद्ध हस्ती थीं। बारहवीं शताब्दी कर्नाटक के में ‘उदुतदी’ नामक स्थान पर जन्मी अक्का महादेवी के भक्ति काव्य का कन्नड़ गद्य में भक्ति कविता में ऊँचा योगदान माना जाता है। उन्होंने 430 वचन कविताएँ और मंत्रोगोप्य तथा योगांगत्रिविध नामक दो लघु रचनाएँ कीं। मंत्रोगोप्य तथा योगांगत्रिविध को कन्नड़ साहित्य में उनका सबसे उल्लेखनीय योगदान माना जाता है। कन्नड़ भक्ति आंदोलन वीर शैव मत के महान् संत जैसे बसव, चेन्न बसव, किन्नरी बोम्मैया, सिद्धर्मा, अलामप्रभु एवं दास्सिमैय्या ने उन्हें अक्का यानी बड़ी बहन नाम दिया था। वीर शैव धर्म की स्थापना बसवण्णा ने की थी।

‘अनुभव मण्डप’ नामक संस्था में प्रतिदिन जीवन एवं साहित्य की चर्चा की जाती थी। वचन साहित्य की एक सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि अनुभव मण्डप नामक संस्था में समाज के निम्न स्तर के लोगों को भी अपने अनुभवों की चर्चा करने का अधिकार था। ये भक्त एवं भगवान के सम्बन्ध को दास सम्बन्ध के रूप में ही मानते थे। जिस प्रकार वचन साहित्य की रचना की गयी, उसी प्रकार दास साहित्यकारों ने भी भक्ति साधना एवं साहित्य की रचना की। हरिदास ने गीतों के द्वारा अपनी रचनाओं को प्रस्तुत किया। अपनी विद्वत्ता के कारण व्यासराय को कर्नाटक संगीत का पितामह कहा जाता है। अक्का महादेवी एक परम शिव भक्त थीं। इनके माता-पिता शिव भक्त थे। दस वर्ष की आयु में महादेवी ने शिवमंत्र की दीक्षा प्राप्त की। इन्होंने अपने द्वारा रचित अनेक कविताओं में भगवान शिव का सजीव चित्रण किया है। यह प्रभु की सगुण भक्ति करती। भक्ति भाव के चार प्रकार (दास्य, सखा, वात्सल्य और माधुर्य भाव ) में, महादेवी जी की अपने इष्ट के प्रति माधुर्य भक्ति थी। यह भगवान शिव को “चेन्नमल्लिकार्जुन” अर्थात् “सुन्दर चमेली के फूल के समान श्वेत, सुन्दर प्रभु !” कहकर संबोधित करतीं। इन्होंने भगवान शिव को ही अपना पति माना। उत्तर भारत की भक्तिमति मीरा के कृष्ण प्रेम के समान ही महादेवी जी की भगवान शिव में प्रीति थी। इनका वैवाहिक जीवन भी कुछ-कुछ मीरा के जीवन के समान ही था। अक्का महादेवी का प्रकृति प्रेम उनके कई वचनों में गहराई से झलकता है, जो जंगलों, गाँवों के माध्यम से उनकी यात्रा और चहचहाते पक्षियों, नाचते मोरों और तितलियों के साथ उनकी बातचीत से लेकर प्रकृति के दृश्य विवरणों से भरपूर हैं। हालाँकि वह पूरी तरह से अकेली है, लेकिन उसके वचनों को पढ़ते समय किसी को उसका अलगाव महसूस नहीं होता क्योंकि वह अपने आस-पास के सभी प्राणियों के साथ बातचीत करती है। अपने एक वचन में, वह तोते, कोयल, मधुमक्खियों, हंसों और मोरों से पूछती है कि क्या उन्होंने उसके प्रिय दिव्य प्रेमी को देखा है। अक्का

महादेवी ने अपने सलोन प्रभु का सजीव चित्रण अनेकों कविताओं में किया है। उसके लिए पहाड़, गुफाएँ, पक्षी, जानवर, मिट्टी और आकाश जीवन और दिव्यता से स्पंदित हो रहे थे। घने जंगलों और नदियों के बीच स्थित, वह श्री शैलम में कदलीवन (केला ग्रोव) पहुँचती है, और सच्ची योगिनी और रहस्यवादी होने के नाते, वह ब्रह्मांडीय एकता और सृष्टि और प्रकृति के हर पहलू में निहित दिव्यता का अनुभव करती है और अनुभव का वर्णन इस प्रकार करती है: “पूरा जंगल एक मनोकामना पूर्ण करने वाला वृक्ष है, सभी पौधे जीवन प्रदान करने वाले हैं, हर पत्थर एक कीमिया पत्थर है, हर जगह एक पवित्र स्थान है, सारा पानी अमृत है और हर जानवर एक मनुष्य जैसा जानवर है, हर पत्थर जिस पर आप ठोकर खाते हैं, एक इच्छा है— पूरा करने वाला गहना जैसे ही मैं चेन्नामल्लिकार्जुन के प्रिय पर्वत का अवलोकन करने गया, मैंने पवित्र केला-उपवन देखा!”

अपने एक अन्य वचन में, वह पेड़ों की निःस्वार्थ प्रकृति की ओर इशारा करती हैं और उनके दान देने वाले स्वभाव के कारण उनकी तुलना सर्वोच्च भक्तों से करती हैं। जंगलों में यात्रा के दौरान वह अपने भोजन के लिए पौधों और पेड़ों पर निर्भर रहती है। अक्का का सह-अस्तित्व और स्थिर बने रहने का संदेश उनकी कविताएँ उनकी गहन अंतर्दृष्टि और प्रकृति से जीवन-पाठ और जीवन और जीवन जीने के तरीके के प्रति उनके अपने दृष्टिकोण का एक सम्मोहक संयोजन हैं। निम्नलिखित एक उल्लेखनीय कविता है जिसमें प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व के संदेश के साथ जीवन में प्रशंसा और निंदा से अप्रभावित रहने के विचार को खूबसूरती से पिरोया गया है। पहली पंक्ति में, वह सवाल करती है कि पहाड़ पर घर बनाने वाला उसके आसपास के जंगली जानवरों से कैसे डर सकता है, और कहती है कि पृथ्वी पर जन्म लेने के बाद, हम आलोचना और दोष से कैसे डर सकते हैं, और सभी से इसे बनाए रखने का आग्रह करती हैं। सभी परिस्थितियों के बीच मन का संतुलन। भगवत गीता में कही गई समत्वम् योग उच्यते की अवधारणा को अक्का ने अपनी सरल और गहन शैली में खूबसूरती से समझाया है। अपने जीवन में, वह अपनी मनमोहक सुंदरता और जीवन द्वारा उसे मिलने वाले सुख-दुख के प्रति उदासीन थी। उनका कहना था कि वे केवल नाम मात्र को एक स्त्री हैं, किन्तु उनका देह, मन, आत्मा सब शिव का है। जब वह युवा हुई तो स्थानीय राजा कौशिक, अक्का महादेवी के अप्रतिम सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया। परिवार के लोग विवाह के लिए सहमत हो गए, क्योंकि राजा के कोप का भाजन परिवार वाले नहीं बनना चाहते थे। अक्का महादेवी ने राजा से विवाह तो कर लिया, किंतु उसे शारीरिक रूप से दूर ही रखा। उनका कहना था कि उनका विवाह पहले ही शिव से हो चुका है। राजा उनसे कई तरीकों से प्रेम निवेदन



करता रहा, लेकिन हर बार वह शिव से विवाह की बात को दोहरातीं। एक दिन राजा ने सोचा कि ऐसी पत्नी को रखने का कोई मतलब नहीं है। ऐसी पत्नी के साथ भला कोई कैसे रह सकता है, जिसने किसी अदृश्य व अनजाने व्यक्ति से विवाह किया हुआ है। उन दिनों औपचारिक रूप से तलाक नहीं होते थे। किंतु राजा परेशान रहने लगा। उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या करें। उसने अक्का को अपनी राजसभा में बुलाया और राजसभा से फैसला करने को कहा। जब सभा में अक्का महादेवी से पूछा गया तो वह यही कहती रहीं कि उनके पति कहीं और हैं। राजा और भी क्रोध में आ गया, क्योंकि इतने सारे लोगों के सामने उसकी पत्नी कह रही थी कि उसका पति कहीं और है। किसी राजा के लिए यह सहन करना कोई आसान बात नहीं थी। समाज में ऐसी बातों का सामना करना आसान नहीं था। राजा ने कहा, 'अगर तुम्हारा विवाह किसी और के साथ हो चुका है तो तुम मेरे साथ क्या कर रही हो? चली जाओ।' राजा के ऐसे आदेश से अक्का महादेवी वहाँ से चल पड़ीं। जब राजा ने देखा कि अक्का बिना किसी परेशानी के उसे छोड़कर जा रही है, तो क्रोध के कारण उसके मन में नीचता आ गई। उसने कहा, 'तुमने जो कुछ भी पहना हुआ है, आभूषण, कपड़े, सब कुछ मेरा है। यह सब यहीं छोड़ दो और तब जाओ।' लोगों से भरी राजसभा में सत्रह-अठारह साल की युवती अक्का महादेवी ने अपने सभी वस्त्र उतार दिए और वहाँ से निर्वस्त्र ही चल पड़ीं। उस दिन के बाद से अक्का महादेवी ने वस्त्र पहनने से इनकार कर दिया। बहुत से लोगों ने उन्हें समझाने की कोशिश की कि उन्हें वस्त्र पहनने चाहिए, क्योंकि इससे उन्हें ही परेशानी हो सकती है, लेकिन उन्होंने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक और साहित्यिक इतिहास के मध्यकाल की सबसे महत्वपूर्ण

विशेषता को भक्ति आन्दोलन के रूप में पहचाना जा सकता है। साहित्य के क्षेत्र में यह भक्ति काव्य के विराट रस स्रोत के रूप में प्रकट हुआ। भक्ति काल में अधिक कार्य किया गया है। भक्तिकाव्य की इन विभिन्न प्रणालियों की अपनी अलग-अलग विशेषताएँ हैं पर कुछ आधारभूत बातों का सन्निवेश सब में है। प्रेम की सामान्य भूमिका सभी ने स्वीकार की। भक्तिभाव के स्तर पर मनुष्यमात्र की समानता सबको मान्य है। भक्ति काव्य का स्वरूप अखिल भारतीय था। दक्षिण भारत में दार्शनिक सिद्धांतों के ठोस आधार से समृद्ध होकर भक्ति उत्तर भारत में एक आंदोलन के रूप में फैल गयी। इसका प्रभाव कला, लोक व्यवहार आदि जीवन के समस्त क्षेत्रों पर पड़ा। शैवमत का मूलरूप ऋग्वेद में रुद्र की कल्पना में मिलता है। रुद्र के भयंकर रूप की अभिव्यक्ति वर्षा के पूर्व झंझावात के रूप में होती थी। रुद्र के उपासकों ने अनुभव किया कि झंझावात के पश्चात् जगत को जीवन प्रदान करने वाला शीतल जल बरसता है और उसके पश्चात् एक गम्भीर शान्ति और आनन्द का वातावरण निर्मित हो जाता है। अतः रुद्र का ही दूसरा सौम्य रूप शिव जनमानस में स्थिर हो गया। वीर शैव मत के संस्थापक महात्मा वसव थे। इस सम्प्रदाय के मुख्य ग्रन्थ ब्रह्म सूत्र पर 'श्रीकरभाष्य' और 'सिद्धान्त-शिखामणि' हैं। इनके अनुसार अन्तिम तत्व अद्वैत नहीं, अपितु विशिष्टाद्वैत है। यह सम्प्रदाय मानता है कि परम तत्व शिव पूर्ण स्वातन्त्र्यरूप है। स्थूल चिदचिच्छक्ति विशिष्ट जीव और सूक्ष्म चिदचिच्छक्ति विशिष्ट शिव का अद्वैत है। वीर शैव मत को लिंगायत भी कहते हैं। लिंगायत समुदाय दक्षिण में काफी प्रचलित है। शैव ब्राह्मणोंको जंगम भी कहा जाता है, इस संप्रदाय के लोग शिव लिंग की उपासना करते हैं और गले में धारण करते हैं। बसव पुराण में लिंगायत समुदाय के प्रवर्तक अल्लभ प्रभु और उनके शिष्य बसव को माना गया है।

## वैदिक युगीन है भारतीय रसायन परंपरा

मदनलाल वर्मा

भारत में रसायन शास्त्र की अति प्राचीन परंपरा रही है। पुरातन ग्रंथों में धातुओं, अयस्कों, उनकी खदानों, यौगिकों तथा मिश्र धातुओं की अद्भुत जानकारी उपलब्ध है। इन्हीं में रासायनिक क्रियाओं में प्रयुक्त होने वाले सैकड़ों उपकरणों के भी विवरण मिलते हैं। भारतीय रसायन के इतिहास में सबसे बड़ा व्यक्तित्व नागार्जुन का है। जिसने चरक आदि की मान्य पद्धति के समकक्ष धातु-रसायन के प्रयोग पर विशेष बल दिया। नागार्जुन भारतीय रसायन के प्रवर्तक माने जा सकते हैं। यह कहना कठिन है कि नागार्जुन का जन्म कब हुआ? आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने इसे सातवीं या आठवीं शताब्दी का माना है। पर इसके लिए जो तर्क दिये हैं, वे अधिक विश्वसनीय नहीं हैं। नागार्जुन माध्यमिक बौद्धों के महायान सम्प्रदाय का प्रसिद्ध विचारक और तत्ववेत्ता था। बौद्धों में महायान तथा हीनयानों का विशिष्ट अन्तर तृतीय महापरिषद् के बाद से आरम्भ हुआ जो कनिष्क के समय हुई थी। नागार्जुन इस नूतन महायान सम्प्रदाय के प्रसिद्ध नेताओं में से एक था। कहा जाता है कि इस सम्प्रदाय का प्रसिद्ध सूत्र 'सर्वे शून्यम्' इसी का चलाया हुआ है। व्हेनसांग के शब्दों में उस समय के चार तेजोमान सूर्य थे—नागार्जुन, देख अश्वघोष और कुमारलब्ध।

कहा जाता है कि नागार्जुन बोधि-सत्व की जीवनी का अनुवाद चीनी भाषा में 401-409 सन् में हुआ। नागार्जुन की ख्याति भारत के बाहर चीन और तिब्बत तक पहुँची हुई थी। नागार्जुन विदर्भ के एक धनी ब्राह्मणकुल में जन्मे थे। ज्योतिषियों ने इनके जन्म पर घोषित किया था कि यह एक सप्ताह में ही मर जायेंगे। ज्योतिषियों की सहायता से इन्हें थोड़ी और आयु मिली। बाद में यह खिन्न बालक मगध के 'नालेन्द्र विहार' में पहुँचा और वहाँ वह बौद्ध भिक्षु बन गया। किंवदन्ती है कि नालन्दा में एक बार चोर दुर्भिक्ष पड़ा और बौद्धों का जीवन संकट में पड़ गया। धन-संग्रह के लिए बहुत से व्यक्ति निकल पड़े और इस प्रयास में ही किसी तपस्वी से नागार्जुन ने रसायन-विद्या सीखी तथा सामान्य धातुओं से सोना बनाना जाना। इस विद्या को सीखकर जब वह नालन्दा पहुँचे, तब निश्चु-संग का आर्थिक संकट गिर गया। नागार्जुन के समय से बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों में ब्राह्मण-धर्म के सिद्धान्तों का सम्मिश्रण आरम्भ हुआ। इसके कुछ समय बाद ही गान्धार के एक भिक्षु असंग ने जो योगाचारभूमिशास्त्र लिखा उसमें उसने पतंजलि योग का भी समावेश किया। शैवतंत्रों के समान बौद्धतंत्र ग्रन्थ भी बनने लगे। शिव का स्थान बोधिसत्वों ने ले लिया और 'शक्ति' का स्थान बौद्धतंत्रों में 'तारा' ने ले लिया। धीरे-धीरे बौद्धतंत्रों में हिन्दू देवताओं को भी प्रतिष्ठित स्थान दिया गया। तंत्रों के समान महायान सम्प्रदाय में 'धारणी' बनी और ध्यानी बुद्ध वैरोचन, अक्षीम्य, अमिताभ बुद्ध आदि की इस

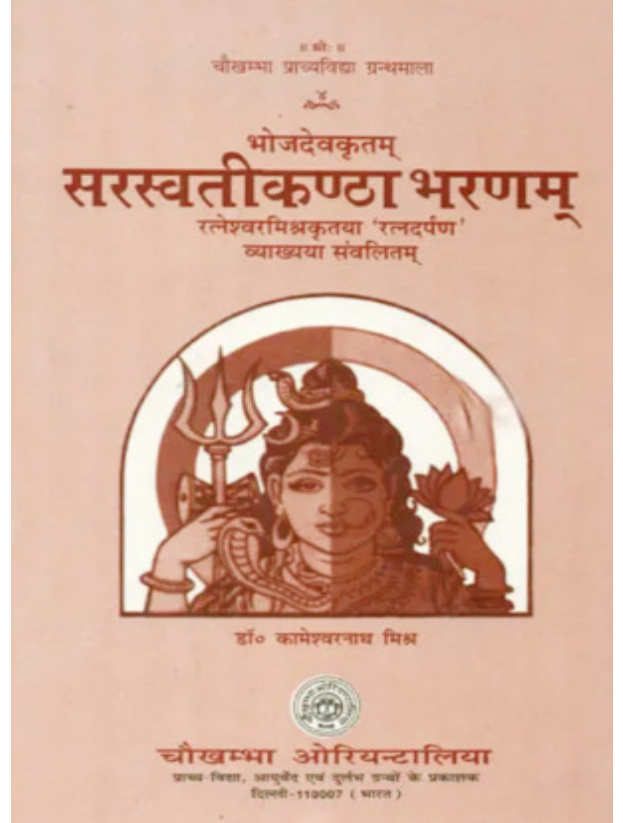
युग में कल्पना की गई। पुराने बौद्धधर्म के कर्म के अनुसार गति मानी जाती थी, पर इस नवीन युग में मंत्रों की आवृत्ति से मुक्ति का सरल उपाय निकाल लिया गया। महायान के नये रूप के अनुकूल वैपुल्यसूत्र बनने लगे, जिनमें धारणियों को विशेष स्थान मिला। इसी समय सद्धर्म पुण्डरीक, ललितविस्तर, तथागत गुह्यक, प्रज्ञापारमिता आदि ग्रन्थ बने। भारतीय तंत्र-ग्रन्थ सातवीं-आठवीं शताब्दी में ही चीन में पहुँच गए थे। 'अमोघवज्र' नामक उत्तरीय भारत का श्रमण सन् 746-771 ईसवी में चीन में रहा था और जादू-टोटके के मंत्रों का उसने वहाँ प्रचार किया। भारतीय पाण्डित सातवीं से लेकर ग्यारहवीं शताब्दियों के बीच तिब्बत में भी अपने तांत्रिक विचार ले जा चुके थे। इनके अनेक तंत्र-ग्रन्थों में यत्र-तत्र कुछ रासायनिक योग भी दिए गए हैं। तिब्बत में अनेक ऐसे तंत्र ग्रन्थ पाए गए हैं जिनमें रसायन के स्फुट योगों का उल्लेख है, पर सबसे अधिक महत्व का बौद्ध-तंत्र वह है जो नागार्जुन का लिखा गया माना जाता है। महायान सम्प्रदाय के इस तंत्र का नाम रसरत्नाकर है। इसमें यत्र-तत्र इस प्रकार के वाक्य हैं— 'प्रणिपत्य सर्वबुद्धाम्' इस प्रकार इसमें सर्वबुद्धों के प्रति निष्ठा प्रकट की गई है। इस ग्रन्थ में एक स्थल पर वाक्य है— प्रज्ञापारमिता ने मध्यरात्रि के समय स्वप्न में नागार्जुन को दर्शन दिए और उसे अमुक अमुक योग बताए। रसरत्नाकर में रास्तवर्णिक विधियों का वर्णन नागार्जुन, मांडव्य, वटयक्षिणी, शालिवाहन और एघोष के संवादों के रूप में दिया गया है। रत्नघोष और मांडव्य के नाम अन्य रसग्रन्थों में भी आते हैं। रसरत्नाकर ग्रन्थ सातवीं या आठवीं शताब्दी का लिखा प्रतीत होता है। रसरत्नाकर ग्रन्थ बड़े महत्व का है। इसके आधार पर कुछ रासायनिक विधियों का अनुमान लगाया जा सकता है। वेदों में धातुओं के वर्णन के आधार पर हम भारत में रसायन शास्त्र का प्रारंभ ईसा से हजारों वर्ष पूर्व मान सकते हैं।

उल्लेखनीय है कि उपनिषदों का रचनाकाल भी यजुर्वेद के आसपास ही माना जाता है जबकि छांदोग्य उपनिषद में धात्विक मिश्रण का स्पष्ट वर्णन मिलता है। यदि हम इसे पर्याप्त न मानें और कहें कि केवल रसायन शास्त्र में प्रयुक्त प्रक्रमों एवं रासायनिक क्रियाओं के ज्ञान के समुचित प्रमाण के साथ ही हम रसायन शास्त्र का प्रारंभ मान सकते हैं, तो भी हमें ईसा के एक हजार वर्ष पूर्व के काल (ईसा पूर्व प्रथम सहस्राब्दी) पर तो सहमत होना ही पड़ेगा। यही वह काल था जब विश्व प्रसिद्ध चरक एवं सुश्रुत संहिताओं का प्रणयन हुआ, जिनमें औषधीय प्रयोगों के लिए पारद, जस्ता, ताँबा आदि धातुओं एवं उनकी मिश्र धातुओं को शुद्ध रूप में प्राप्त करने तथा सहस्रत्रों औषधियों के विरचन में व्यवहृत रासायनिक प्रक्रियाओं यथा — द्रवण, आसवन, उर्ध्वपातन आदि का विस्तृत एवं युक्तियुक्त वर्णन मिलता है।

पुस्तक चर्चा/मिथिलेश यादव

## भोज रचित “सरस्वतीकण्ठाभरण” और रससिद्धान्त

धार के महाराज भोजराज सरस्वतीकण्ठाभरण का रचनाकाल ईसवी ग्यारहवीं शताब्दी का मध्य माना जा सकता है। इसके प्रणेता काव्यप्रकाश के रचयिता मम्मट (ई. सन् 1100 के लगभग) से किञ्चित् पूर्ववर्ती हैं। यद्यपि आनन्दवर्धन द्वारा ध्वनिसिद्धान्त की स्थापना हो चुकी थी तथापि उस समय तक काव्यात्मा के रूप में ध्वनि की मान्यता विवादग्रस्त सी ही थी अतएव साक्षात् रूप से ध्वनि को काव्य की परिभाषा में आत्मा के रूप में स्थान देने की दृढ़ता न भोजदेव ने ही अपनाई और न भट्ट मम्मट ने ही। दोनों आचार्यों ने काव्य में दोषाभाव तथा गुणवत्ता को प्रधानता दी है। भोजदेव की यह विशेषता है कि उन्होंने अलंकारों की उपादयेता कंठस्तः स्वीकार की है तथा काव्य के लिए रसान्वित होना आवश्यक समझा है। यों भोजदेव के सरस्वतीकण्ठाभरण ने अंशतः मम्मट को एवं विश्वनाथ को प्रभावित किया है। सरस्वतीकण्ठाभरण एक दीर्घकाय ग्रंथ है जिसमें पाँच परिच्छेद हैं। प्रथम परिच्छेद में रचयिता ने काव्यसामान्य की परिभाषा देने के पश्चात् सर्वप्रथम काव्य के दीर्घ एवं गुण का विवेचन किया है। इसी संदर्भ में भोजदेव ने पद, वाक्य एवं वाक्यार्थगत दोष बताए हैं। हर प्रकार के दोषों की संख्या सोलह है। भोजदेव के अनुसार गुण, शब्दगत और वाक्यार्थ गत होते हैं और प्रत्येक के चौबीस भेद हैं। प्रथम परिच्छेद के अन्त में कतिपय दोष कहीं कहीं गुण बन जाते हैं। इस काव्यतत्त्व को उदाहरण द्वारा समझाते हुए उन्होंने काव्यदोषों का नित्यानित्यत्व स्वीकृत किया है। द्वितीय परिच्छेद में शब्दालंकार का निर्णय करते हुए उन्होंने सर्वप्रथम औचित्य पर बल दिया तथा जाति, रीति, वृत्ति, छाया, मुद्रा, उक्ति, युक्ति, भणिति, गुंफना, शय्या एवं पठिति का सोदाहरण विवेचन किया है। इन बारह तत्त्वों में से रीति को छोड़ शेष तत्त्वों का विशद विवेचन संस्कृत के किसी अन्य उपलब्ध साहित्यग्रंथ में प्राप्त नहीं होता। बाणभट्ट ने काव्यसौष्टव के विशेष तत्त्व, शय्या का उल्लेख किया है परन्तु उसकी परिभाषा केवल सरस्वतीकण्ठाभरण में ही उपलब्ध होती है। तत्पश्चात्, यमक, श्लेष, अनुप्रास, चित्र, प्रहेलिका, गूढ एवं प्रश्नोत्तर अलंकारों के भूरि भेदोपभेदों का सोदाहरण विवरण दिया गया है। इस अंश में भी सरस्वतीकण्ठाभरण की सर्वथा निजी विशेषता है। तदनंतर भोजदेव काव्यव्युत्पत्ति के कारणों का विवेचन कर काव्य के तीन भेदों को श्रव्य, दृश्य एवं चित्राभिनय के रूप में प्रस्तुत करते हैं। दृश्यकाव्य के अंतर्गत उन्होंने दशरूपकों का उल्लेख नहीं किया है वरन् नृत्त एवं नृत्य पर ही उनका विभाजन सीमित है। तीसरे परिच्छेद में अर्थालंकारों के स्वरूप एवं प्रकार भेद का विवेचन है जो इतर साहित्याचार्यों की



अपेक्षा भिन्न स्वरूप को लिए हुए है। चौथे परिच्छेद में उभयालंकारों का विवेचन है जिसमें उपमा आदि अलंकारों के भेदोपभेदों को सविस्तार समझाया है। अंतिम परिच्छेद है—रसविवेचन। इसमें नायकादि का तथा विभावों, भावों एवं अनुभावों का विस्तारपूर्वक स्वरूप निर्णय किया गया है साथ ही साथ काव्यपाक, विविध रतिराग के स्वरूप का भी निर्देश है। अंत में भारती, कैशिकी आदि वृत्तियों के विवेचन के साथ ग्रंथोपसंहार होता है। सरस्वतीकण्ठाभरण में रससिद्धान्त की विवेचना प्रायः विषय पर एक विहंगम दृष्टिमात्र है। काव्यगत रस गंभीर विषय है जिसकी गरिमा के साथ पूर्णतः न्याय करने की दृष्टि से भोज ने एक शृंगारप्रकाश नामक स्वतंत्र ग्रंथ की रचना कर रसविवेचन के अध्याय की पूर्ति की है।

सरस्वतीकण्ठाभरण की विशेषता यह है कि यह इतर साहित्यशास्त्रीय ग्रंथों की अपेक्षा व्यापक एवं व्युत्पादक ग्रंथ है। इसके रचयिता भोजदेव ग्रंथविस्तार के भय से भीत होनेवाले नहीं हैं, उदाहरण दे—देकर अनेक सूक्ष्म भेद एवं उपभेदों को समझाने का सदा वे उदार प्रयास करते हैं।

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ, स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन के लिए बिड़ला भवन, देवास रोड, उज्जैन-456010 से प्रसारित. सम्पादक : श्रीराम तिवारी, समन्वयक : राजेश्वर त्रिवेदी.

आलेख सेवा निःशुल्क वितरण के लिए. फोन: 0734-2521499, 0755-2660407 Email:mvspujain@gmail.com, vikramadityashodhpeth@gmail.com